Indian Journal of Multidisciplinary Research and Studies
ISSN: 3108-1681 | Volume- 1, Issue- 2 | October – December 2025

भारतीय जनजातीय समुदायों में भूमंडलीकरण के प्रभावः परंपरा, पहचान एवं सामाजिक परिवर्तन का अध्ययन

अंशु सिंह
समाजशास्त्र विभाग, इज़ाबेला थोबर्न कॉलेज, लखनऊ

सारांशः

यह शोध पत्र भूमंडलीकरण के भारतीय जनजातीय समुदायों पर बहुआयामी प्रभावों विशेषकर परंपरा, पहचान और सामाजिक परिवर्तन का विश्लेषण करता है। 1990 के दशक से आरंभ उदारीकरण नीतियों ने इन समुदायों को वैश्विक बाजार, डिजिटल संचार और औद्योगिक विकास से जोड़ा, जिसके फलस्वरूप सांस्कृतिक प्रथाओं का बाजारीकरण, पारंपरिक ज्ञान का क्षरण, और सामाजिक संस्थाओं का विखंडन हुआ। द्वितीयक आंकड़ों (जनगणना, सरकारी रिपोर्टें, शोध पत्र) पर आधारित यह वर्णनात्मक-विश्लेषणात्मक अध्ययन मध्य भारत एवं उत्तर-पूर्वी राज्यों के जनजातीय परिदृश्यों पर केंद्रित है। परिणाम दर्शाते हैं कि भूमंडलीकरण ने दोहरी प्रक्रिया चलाईः एक ओर विस्थापन (40%+ जनजातीय प्रभावित), गरीबी (45.3% बीपीएल), भाषा-ह्रास जैसी चुनौतियाँ उत्पन्न कीं, वहीं दूसरी ओर डिजिटल प्लेटफॉर्म्स (41% ग्रामीण इंटरनेट) के माध्यम से सांस्कृतिक मुखरता और हाइब्रिड पहचान का निर्माण भी किया। गिडेंस के 'ग्लोकलाइजेशन' एवं कैस्टेल्स के 'प्रतिरोध पहचान' सिद्धांतों से प्रेरित यह अध्ययन निष्कर्ष निकालता है कि जनजातीय समाज आधुनिकता के साथ अनुकूलन कर रहा है, परंतु सतत विकास हेतु भागीदारीपूर्ण नीतियाँ, भाषा संरक्षण और न्यायपूर्ण पुनर्वास अनिवार्य हैं।

मुख्य शब्दः भूमंडलीकरण, जनजातीय पहचान, सांस्कृतिक परिवर्तन, विस्थापन, डिजिटल संचार,

प्रस्तावनाः

भारत की लगभग 8.6% जनसंख्या जनजातीय समुदायों से निर्मित है, जो अपनी विशिष्ट जीवन-शैली, प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भरता और अद्वितीय सांस्कृतिक पहचान के लिए जानी जाती है। 1990 के दशक में अपनाई गई उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण (एलपीजी) की नीतियों ने इन समुदायों के पारंपरिक ढांचे को गहराई से प्रभावित किया है। भूमंडलीकरण एक ऐसी बहुआयामी प्रक्रिया है जिसने भौगोलिक सीमाओं को लांघकर बाजार, तकनीक और संस्कृति का वैश्विक एकीकरण किया है, जिससे जनजातीय क्षेत्रों में "विकास" और "विस्थापन" के द्वंद्व पैदा हुए हैं। जनजातीय समाज, जो ऐतिहासिक रूप से सापेक्षिक अलगाव में रहा था, अब वैश्विक बाजार की शक्तियों, उपभोक्तावाद और डिजिटल मीडिया के सीधे प्रभाव में है।

अध्ययन की प्रमुख समस्या यह है कि जहाँ एक ओर भूमंडलीकरण ने शिक्षा, स्वास्थ्य और संचार के नए अवसर प्रदान किए हैं, वहीं दूसरी ओर इसने जनजातीय अस्मिता के लिए गंभीर संकट भी उत्पन्न किए हैं। बड़े पैमाने पर होने वाले औद्योगिक उत्खनन और बांध परियोजनाओं के कारण इन समुदायों का अपनी जल, जंगल और जमीन से विस्थापन हुआ है, जिससे उनकी आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई है। सांस्कृतिक स्तर पर, वैश्विक लोकप्रिय संस्कृति के बढ़ते प्रभाव से पारंपरिक भाषाओं, लोक-कलाओं और सामाजिक मूल्यों का निरंतर क्षरण हो रहा है, जो "सांस्कृतिक समानीकरण" की स्थिति पैदा कर रहा है। इसके परिणामस्वरूप, इन समुदायों में अपनी पहचान बचाने के लिए एक ओर तीव्र संघर्ष की स्थिति दिखती है, तो दूसरी ओर आधुनिकता के साथ अनुकूलन की प्रक्रिया भी

सक्रिय है। अतः यह शोध पत्र भूमंडलीकरण के इस दोधारी प्रभाव का विश्लेषण करते हुए यह समझने का प्रयास करता है कि भारतीय जनजातीय समाज किस प्रकार अपनी परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन साध रहा है।

भूमंडलीकरण की अवधारणा को एंथनी गिडेंस "विश्वव्यापी सामाजिक संबंधों के प्रगामीकरण" के रूप में परिभाषित करते हैं, जो दूरस्थ स्थानों को इस तरह जोड़ता है कि स्थानीय घटनाएँ मीलों दूर होने वाली घटनाओं से प्रभावित होती हैं। जनजातीय संदर्भ में, यह केवल आर्थिक एकीकरण नहीं बल्कि "ग्लोकलाइजेशन" की वह प्रक्रिया है जिसमें वैश्विक प्रभाव स्थानीय सांस्कृतिक तत्वों के साथ मिलकर नए 'हाइब्रिड' रूप धारण करते हैं। आधुनिकता के प्रसार ने इन समुदायों में "रिफ्लेक्सिविटी" या आत्म-चिंतन की प्रवृत्ति को जन्म दिया है, जहाँ पारंपरिक जीवन-पद्धतियाँ अब बिना सवाल किए स्वीकार नहीं की जातीं, बल्कि वैश्विक विकल्पों के सापेक्ष जाँची और परखी जाती हैं। रोलाण्ड रॉबर्टसन के अनुसार, यह प्रक्रिया सार्वभौमिकता और विशिष्टता के बीच एक निरंतर तनाव पैदा करती है, जिसे जनजातीय समाज अपनी अस्मिता की रक्षा और आधुनिक अवसरों के चयन के माध्यम से अभिव्यक्त करता है।

परंपरा और पहचान की अवधारणाएँ इस अध्ययन में स्थिर न होकर "गतिशील प्रक्रम" के रूप में देखी गई हैं। जहाँ परंपरा को ऐतिहासिक निरंतरता के रूप में माना जाता है, वहीं भूमंडलीकरण के दबाव में इसका "विषय-वस्तुकरण" भी हुआ है, जैसे जनजातीय कला और पर्यटन का वैश्विक व्यापार। पहचान अब केवल जन्म या रक्त संबंधों तक सीमित नहीं रह गई है; मैनुअल कैस्टेल्स के 'नेटवर्क सोसाइटी' सिद्धांत के अनुसार, जनजातीय पहचान अब डिजिटल संचार और वैश्विक मानवाधिकार विमर्श के माध्यम से एक "प्रतिरोध की पहचान" के रूप में पुनर्गठित हो रही है। सामाजिक परिवर्तन के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य में यह अध्ययन "सांस्कृतिक संकरण" के मॉडल को अपनाता है, जो यह दर्शाता है कि जनजातीय समाज पूरी तरह से मुख्यधारा में विलीन होने के बजाय अपनी मौलिकता को नए माध्यमों (जैसे डिजिटल प्लेटफॉर्म) के साथ संयोजित कर रहा है।

साहित्य समीक्षाः

भूमंडलीकरण और जनजातीय समुदायों के अंतर्संबंधों पर विद्वानों ने विभिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत किए हैं। साहनी एवं सिंह (2006) के अनुसार, जनजातीय समाज में आधुनिकीकरण और भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने जहाँ एक ओर विकास के नए मार्ग खोले हैं, वहीं दूसरी ओर इसने असमानता, गरीबी और सामाजिक संघर्षों के स्तर को भी बढ़ा दिया है। पांडेय (2016) ने ओडिशा के नियामगिरी क्षेत्र के कोंध जनजातियों का उल्लेख करते हुए बताया कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों की खनन परियोजनाओं ने जनजातीय समुदायों के भौतिक विस्थापन और उनकी पारंपरिक आजीविका के साधनों के विनाश में बड़ी भूमिका निभाई है। इग्नू (2022) की रिपोर्ट में स्पष्ट किया गया है कि भूमंडलीकरण इन समुदायों के लिए एक 'मिश्रित वरदान' है, जो सशक्तिकरण के अभूतपूर्व अवसर तो प्रदान करता है, परंतु उनकी सांस्कृतिक स्वायत्तता के लिए एक बड़ा खतरा भी है।

सिंह एवं वर्मा (2022) ने अपने अध्ययन में पाया कि भूमंडलीकरण के प्रभावस्वरूप जनजातीय युवाओं के बीच डिजिटल प्लेटफॉर्मों के माध्यम से एक नई पहचान निर्मित हो रही है, जिससे वे अपनी लोक-कलाओं और अधिकारों को वैश्विक स्तर पर व्यक्त कर रहे हैं। मीडनापुर कॉलेज (2023) के एक शोध पत्र के अनुसार, औद्योगिकरण की तीव्र गति ने जैव-विविधता और सांस्कृतिक समृद्धि के बीच के संतुलन को बिगाड़ दिया है, जिससे जनजातीय क्षेत्रों में 'अस्थिर उपभोग पैटर्न' विकसित हो रहा है। कुए (2024) के शोधार्थियों का तर्क है कि जनजातीय समुदायों के पास बाजार तक पहुँचने के लिए पर्याप्त संसाधनों का अभाव है, जिसके कारण वे वैश्विक अर्थव्यवस्था में अक्सर शोषण का शिकार होते हैं।

थारू जनजाति के संदर्भ में (2025) यह रेखांकित किया गया कि शहरीकरण और आर्थिक पुनर्गठन पारंपरिक प्रथाओं और आत्म-धारणा को प्रभावित कर रहे हैं, जिससे भाषाओं और अनुष्ठानों के विलुप्त होने का जोखिम बढ़ गया है। द मल्टीडिसिप्लिनरी जर्नल (2018) के अनुसार, उत्तर-पूर्व भारत में भूमंडलीकरण ने जनजातीय पहचान के संकट को गहरा किया है, जिससे विभिन्न जातीय समूहों के बीच संसाधन साझाकरण को लेकर तनाव और संघर्ष बढ़े हैं। अंततः, गिडेंस (1990) और बेंडले (2002) जैसे समाजशास्त्रियों का मत है कि हाशियाकृत समूहों द्वारा अपनी पहचान स्थापित करने का संघर्ष भूमंडलीकरण के विरोधाभासी सामाजिक आदेशों का ही परिणाम है।

अध्ययन क्षेत्र:

प्रस्तुत शोध का अध्ययन क्षेत्र संपूर्ण भारतीय जनजातीय परिदृश्य को समाहित करता है, जिसमें विशेष रूप से उन क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित किया गया है जहाँ भूमंडलीकरण की प्रक्रिया सबसे अधिक सक्रिय रही है। भारत के भौगोलिक विस्तार में जनजातीय समुदायों का वितरण मुख्य रूप से दो प्रमुख क्षेत्रों 'मध्य भारत' (जैसे मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड और ओडिशा) और 'उत्तर-पूर्वी राज्यों' (जैसे असम, नागालैंड और मणिपुर) में पाया जाता है, जहाँ प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता ने वैश्विक उद्योगों और बाजार शक्तियों को आकर्षित किया है। अध्ययन क्षेत्र के रूप में इन भौगोलिक इकाइयों का चयन इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ जनजातीय अस्मिता, भूमि अधिकारों और विस्थापन के मुद्दे भूमंडलीकरण के सीधे परिणाम के रूप में उभरकर सामने आए हैं। इसके अतिरिक्त, यह शोध उन 'जनजातीय पॉकेट्स' का भी संज्ञान लेता है जहाँ डिजिटल संचार और शहरीकरण ने सामाजिक संरचना और पारंपरिक पहचान को नए रूप में परिभाषित किया है।

अध्ययन के उद्देश्य:

1. भूमंडलीकरण के फलस्वरूप जनजातीय सांस्कृतिक प्रथाओं, पारंपरिक ज्ञान और सामाजिक संस्थाओं में आए परिवर्तनों का सूक्ष्म विश्लेषण करना।
2. जनजातीय आजीविका, विस्थापन और डिजिटल संचार के प्रभावों के बीच समुदाय की बदलती पहचान और सामाजिक गतिशीलता का अध्ययन करना।

शोध विधि:

प्रस्तुत शोध पत्र पूर्णतः द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण पर आधारित है, जिसके अंतर्गत अध्ययन की प्रकृति को वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक रखा गया है। शोध की विषयवस्तु की गहराई को समझने के लिए विभिन्न विश्वसनीय स्रोतों जैसे सरकारी रिपोर्टों (जनगणना 2011, एनएफएचएस), प्रतिष्ठित समाजशास्त्रीय पत्रिकाओं, और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों (यूएनडीपी, यूनेस्को) के प्रकाशनों से सामग्री एकत्रित की गई है। इसके अतिरिक्त, जनजातीय संस्कृति और भूमंडलीकरण पर आधारित पूर्ववर्ती शोध पत्रों, अकादमिक पुस्तकों (जैसे इग्नू और एनसीईआरटी की पाठ्य सामग्री) और डिजिटल पुस्तकालयों से प्राप्त लेखों का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया गया है ताकि परंपरा और पहचान के बदलते स्वरूपों को स्पष्ट किया जा सके। आँकड़ों के चयन में प्रमाणिकता और प्रासंगिकता का विशेष ध्यान रखा गया है, जिससे जनजातीय समुदायों में हो रहे सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों का एक वस्तुनिष्ठ और व्यापक चित्र प्रस्तुत किया जा सके।

परिणाम एवं चर्चा:

प्रस्तुत सांख्यिकीय सूचकों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि भारत में अनुसूचित जनजातियों की कुल जनसंख्या हिस्सेदारी 8.6% है, जो उन्हें एक महत्वपूर्ण सामाजिक-जनसांख्यिकीय समूह के रूप में स्थापित करती है।

भारतीय जनगणना के अनुसार यह आबादी भौगोलिक रूप से मुख्यतः मध्य, पूर्वी और उत्तर-पूर्वी भारत के वन एवं पर्वतीय क्षेत्रों में संकेंद्रित है। भूमंडलीकरण की प्रक्रियाएँ विशेषकर बाजार विस्तार, संसाधन दोहन और औद्योगिक विकास इन क्षेत्रों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर रही हैं।

जनजातीय समुदायों में साक्षरता दर 59% होना सामाजिक परिवर्तन का संकेत देता है, किंतु यह राष्ट्रीय औसत से अभी भी कम है। शिक्षा के प्रसार ने आधुनिक राजनीतिक चेतना, रोजगार अवसरों और पहचान-आधारित आंदोलनों को बल दिया है, परंतु साथ ही पारंपरिक ज्ञान-प्रणालियों के क्षरण का जोखिम भी उत्पन्न हुआ है। डिजिटल प्रसार (ग्रामीण भारत में 41% इंटरनेट उपयोग) ने जनजातीय युवाओं को वैश्विक संस्कृति से जोड़ा है, जिससे सांस्कृतिक आदान-प्रदान बढ़ा है, पर सांस्कृतिक समरूपीकरण की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है।

विकास परियोजनाओं के कारण विस्थापितों में 40% से अधिक आदिवासी होना भूमंडलीकरण के असमान प्रभाव को दर्शाता है। खनन, बांध, औद्योगिक गलियारे और वन भूमि अधिग्रहण ने पारंपरिक आजीविका संरचना को बाधित किया है। चूँकि लगभग 75% जनजातीय कार्यबल कृषि एवं वन उत्पादों पर निर्भर है, इसलिए संसाधन-आधारित अर्थव्यवस्था में परिवर्तन ने उनकी आर्थिक सुरक्षा को कमजोर किया है। इससे सामाजिक विघटन, शहरी पलायन तथा पारंपरिक सामुदायिक संस्थाओं का क्षरण हुआ है।

तालिका 01: जनजातीय के प्रमुख सूचक

क्रम सं.	**जनजातीय संबंधित प्रमुख सूचक**	**संख्या**
1	कुल जनसंख्या में जनजातीय (ST) हिस्सेदारी	**8.6%**
2	जनजातीय समुदायों में साक्षरता दर	**59%**
3	विकास परियोजनाओं के कारण विस्थापित होने वालों में आदिवासियों का प्रतिशत	**40% +**
4	ग्रामीण भारत में इंटरनेट का उपयोग करने वाली जनसंख्या (जनजातीय क्षेत्रों सहित)	**41%**
5	कृषि और वन उत्पादों पर निर्भर जनजातीय कार्यबल	**75 % +**
6	जनजातीय परिवारों में गरीबी रेखा के नीचे (BPL) रहने वालों का प्रतिशत	**45.3%**
7	भारत में अधिसूचित अनुसूचित जनजातियों (ST) की कुल संख्या	**705**

स्रोतः भारत की जनगणना (2011); एनसीईआरटी (2021); क्रॉनिकल इंडिया (2021); बिलासपुर यूनिवर्सिटी (2022); आरजेपीएन (2023); कुई (2024); जनजातीय मामलों का मंत्रालय (2024)।

गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वाले जनजातीय परिवारों का प्रतिशत 45.3% होना आर्थिक विषमता की गंभीरता को इंगित करता है। बाजार-आधारित अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धा, पूंजी की कमी और भूमि अधिकारों की अस्थिरता ने उन्हें हाशिये पर रखा है। हालांकि, स्वयं सहायता समूहों, लघु वन उत्पादों के व्यावसायीकरण और सरकारी कल्याणकारी योजनाओं ने कुछ क्षेत्रों में सशक्तिकरण की दिशा भी प्रदान की है।

भारत में 705 अधिसूचित अनुसूचित जनजातियाँ सांस्कृतिक विविधता की व्यापकता को दर्शाती हैं। भूमंडलीकरण के प्रभाव एकरूप नहीं हैं; कुछ समुदायों में यह अवसर के रूप में उभरा है (शिक्षा, पर्यटन, हस्तशिल्प बाजार), जबकि अन्य में यह सांस्कृतिक संकट और पहचान संकट का कारण बना है।

उपरोक्त विश्लेषण को आगे बढ़ाते हुए यह भी स्पष्ट होता है कि भूमंडलीकरण ने जनजातीय समुदायों की सामाजिक संरचना और पारंपरिक सत्ता तंत्र को प्रभावित किया है। पारंपरिक ग्राम परिषदें, मुखिया-व्यवस्था तथा सामुदायिक निर्णय प्रणाली अब संवैधानिक पंचायती राज संस्थाओं के साथ अंतःक्रिया की स्थिति में हैं। जनजातीय मामलों का मंत्रालय तथा राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग द्वारा संचालित नीतियाँ संरक्षण और विकास के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करती हैं, किंतु जमीनी स्तर पर क्रियान्वयन में क्षेत्रीय विषमता देखी जाती है।

भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप आर्थिक संरचना में विविधीकरण हुआ है। पारंपरिक कृषि और वनोपज पर निर्भरता (75%+) के बावजूद अब मजदूरी, निर्माण कार्य, सेवा क्षेत्र और शहरी अनौपचारिक रोजगार की ओर प्रवृत्ति बढ़ी है। इससे आय के वैकल्पिक स्रोत तो विकसित हुए, किंतु सामुदायिक जीवन की सामूहिकता में कमी आई है। नगरीकरण और श्रम-प्रवास ने पारिवारिक संरचना को संयुक्त से एकल परिवार की ओर परिवर्तित किया है।

चित्र 01: जनजातीय सूचक दंड आरेख

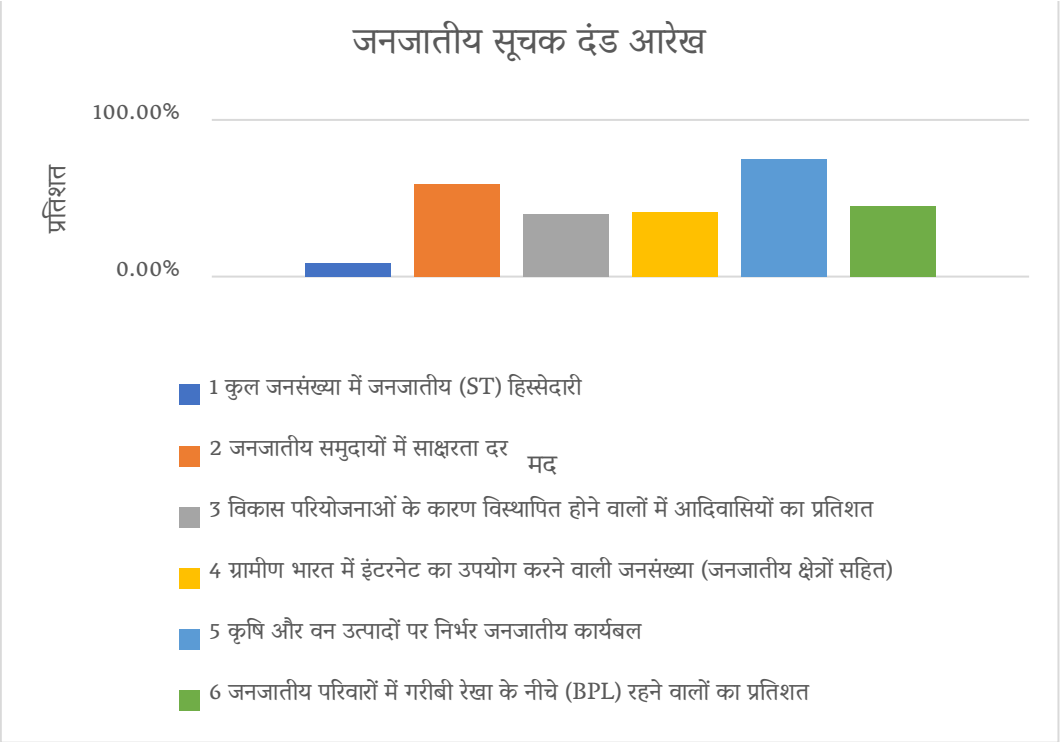

स्रोत: तालिका 01 पर आधारित

सांस्कृतिक पहचान के संदर्भ में भूमंडलीकरण ने द्विपक्षीय प्रभाव डाला है। एक ओर लोकनृत्य, हस्तशिल्प, जनजातीय कला एवं पर्यटन के माध्यम से सांस्कृतिक पुनरुत्थान को प्रोत्साहन मिला है; दूसरी ओर वैश्विक मीडिया, उपभोक्तावाद और आधुनिक जीवनशैली के प्रभाव से भाषाई एवं पारंपरिक रीति-रिवाजों में क्षरण देखा जा रहा है। डिजिटल माध्यमों के कारण सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के नए मंच उपलब्ध हुए हैं, जिससे युवा पीढ़ी अपनी पहचान को पुनर्परिभाषित कर रही है।

लैंगिक परिप्रेक्ष्य में भी परिवर्तन उल्लेखनीय है। शिक्षा और स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है, परंतु विस्थापन और आजीविका संकट की स्थिति में महिलाओं पर श्रम का भार भी बढ़ा है। यह परिवर्तन सामाजिक भूमिकाओं के पुनर्संरचनात्मक स्वरूप को दर्शाता है।

इसके अतिरिक्त, 40%+ विस्थापन दर यह संकेत देती है कि विकास परियोजनाएँ यदि सहभागितामूलक न हों तो सामाजिक तनाव और पहचान संकट को जन्म देती हैं। भूमि अधिकार, वन अधिकार और संसाधन नियंत्रण से संबंधित मुद्दे जनजातीय आंदोलनों के केंद्र में रहे हैं। विशेष रूप से वन अधिकार अधिनियम (2006) का उद्देश्य पारंपरिक वनाधिकारों को मान्यता देना था, जिसने सामुदायिक अधिकारों को वैधानिक आधार प्रदान किया, किंतु क्रियान्वयन में अभी भी चुनौतियाँ हैं।

परिणाम दर्शाते हैं कि भूमंडलीकरण ने जनजातीय समुदायों में संरचनात्मक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक स्तर पर बहुआयामी परिवर्तन उत्पन्न किए हैं। यह परिवर्तन न तो पूर्णतः सकारात्मक हैं और न ही पूर्णतः नकारात्मक; बल्कि यह एक गतिशील प्रक्रिया है जिसमें अवसर और संकट साथ-साथ उपस्थित हैं। अतः नीति-निर्माण में क्षेत्रीय विविधता, सांस्कृतिक विशिष्टता और सतत विकास के सिद्धांतों को सम्मिलित करना अत्यावश्यक है, ताकि परंपरा और आधुनिकता के मध्य समन्वित विकास का मार्ग प्रशस्त हो सके।

निष्कर्ष:

प्रस्तुत अध्ययन से यह प्रतिपादित होता है कि भूमंडलीकरण ने भारतीय जनजातीय समुदायों की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक संरचना में गहन और बहुआयामी परिवर्तन उत्पन्न किए हैं। कुल जनसंख्या में 8.6% हिस्सेदारी रखने वाले तथा 705 अधिसूचित समुदायों में विभाजित जनजातीय समाज विकास की मुख्यधारा से जुड़ने की प्रक्रिया में है, परंतु यह समावेशन समान रूप से संतुलित नहीं है। 59% साक्षरता दर और ग्रामीण क्षेत्रों में 41% इंटरनेट उपयोग यह संकेत देते हैं कि शिक्षा एवं डिजिटल संपर्क के माध्यम से नई चेतना और अवसरों का विस्तार हुआ है, जिससे राजनीतिक सहभागिता, सामाजिक गतिशीलता और पहचान-आधारित पुनर्संरचना को बल मिला है। इसके विपरीत, विकास परियोजनाओं के कारण 40% से अधिक विस्थापन तथा 75% से अधिक कार्यबल का कृषि एवं वन संसाधनों पर निर्भर होना इस तथ्य को उजागर करता है कि संसाधन-आधारित अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन ने उनकी पारंपरिक आजीविका और सामुदायिक जीवन को अस्थिर किया है। 45.3% जनजातीय परिवारों का गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करना यह दर्शाता है कि बाजारोन्मुखी विकास मॉडल अभी भी सामाजिक न्याय और समान अवसर सुनिश्चित करने में पूर्णतः सफल नहीं हुआ है। अतः यह कहा जा सकता है कि भूमंडलीकरण जनजातीय समाज के लिए एक द्वंद्वात्मक प्रक्रिया है, जहाँ एक ओर शिक्षा, संचार, रोजगार एवं सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के नए आयाम खुलते हैं, वहीं दूसरी ओर विस्थापन, सांस्कृतिक क्षरण और आर्थिक असुरक्षा जैसी चुनौतियाँ भी उत्पन्न होती हैं। इसलिए आवश्यकता है कि विकास नीतियाँ सहभागी, सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील तथा अधिकार-आधारित दृष्टिकोण पर आधारित हों, ताकि परंपरा और आधुनिकता के मध्य संतुलित एवं सतत् सामाजिक परिवर्तन सुनिश्चित किया जा सके।

संदर्भ:

1. सिंह, योगेन्द्र (2000). भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन।
2. क्षा, वीरभारत (2008). राज्य, समाज और जनजातियाँ: उत्तर-औपनिवेशिक भारत के मुद्दे. नई दिल्ली: पियर्सन।
3. गुहा, रामचन्द्र (2007). गांधी के बाद का भारत. नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स।

4. एल्विन, वेरियर (2007). भारतीय जनजातियाँ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
5. शर्मा, के.एल. (2013). भारतीय समाज: संरचना एवं परिवर्तन. जयपुर: रावत पब्लिकेशन।
6. जनजातीय कार्य मंत्रालय (भारत सरकार) (2024). वार्षिक प्रतिवेदन 2023–24. नई दिल्ली।
7. भारत सरकार (2011). भारत की जनगणना: अनुसूचित जनजातियों का सांख्यिकीय प्रोफाइल. नई दिल्ली: रजिस्ट्रार जनरल एवं जनगणना आयुक्त।
8. एनसीईआरटी (2021). भारतीय समाज. नई दिल्ली: एनसीईआरटी।
9. प्रसाद, नर्मदेश्वर (2016). भारतीय जनजातीय समाज. पटना: बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
10. सिन्हा, सुरजीत (2012). जनजातीय भारत में सामाजिक परिवर्तन. नई दिल्ली: सेज प्रकाशन (हिन्दी संस्करण)।
11. Agarwal, S. (2013). Globalisation and Social Justice in India. New Delhi: Sage Publications.
12. Chronicle India. (2021). Paramparaagat Janajaateey Samaaj par Bhoomandaleekaran ke Prabhaav. Retrieved from https://www.chronicleindia.in
13. IGNOU. (2022). Globalisation among Indian Tribes (Unit 8, ESO-11). eGyanKosh.
14. Mir, M. A. (2019). Impact of Globalisation on Tribal Communities in India. Social Research Foundation.
15. Sahay, V. S., & Singh, P. K. (2006). Indian Anthropology. Kolkata: Akansha Publishing House.
16. Singh, R., & Verma, K. (2022). Indigenous Identity and Global Forces. International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT).
17. UNDP India. (2024). Tribal Development and Social Inclusion in the Era of Globalisation. Annual Report.
18. Walker, K. L. (2008). The Impact of Neoliberalism on Indigenous Communities. Journal of Peasant Studies, 35(3), 557-580.
19. Giddens, A. (1990). The Consequences of Modernity. Cambridge: Polity Press.
20. Robertson, R. (1995). Glocalization: Time-Space and Homogeneity-Heterogeneity. In M. Featherstone, S. Lash & R. Robertson (Eds.), Global Modernities. London: Sage.
21. Bendle, M. F. (2002). The Crisis of 'Identity' in Contemporary Social Theory. British Journal of Sociology, 53(1), 1-18.
22. Robertson, R. (1992). Globalization: Social Theory and Global Culture. London: Sage.
23. Singh, Y. (2000). Culture Change in India: Identity and Globalization. New Delhi: Rawat Publications.
24. Appadurai, A. (1996). Modernity at Large: Cultural Dimensions of Globalization. Minneapolis: University of Minnesota Press.
25. Castells, M. (2010). The Power of Identity: The Information Age: Economy, Society, and Culture (Vol. II). Wiley-Blackwell.

26. Bhabha, H. K. (1994). The Location of Culture. London: Routledge.
27. Sahay, V. S., & Singh, P. K. (2006). Indian Anthropology. Kolkata: Akansha Publishing House.
28. Pandey, A. D. (2016). The Challenges of Neoliberal Policies and the Indigenous People's Resistance Movement in Odisha. Études caribéennes, (35).